chapter-6

षष्ठं अध्याय

सामाजिकता

सामाजिक तत्व, नारी के विविध रूप, असत् नारी, व्याभिचारिणी, बाहिर्गामिता और बाह्याचारों का विरोध, वेश, कपटपूर्ण व्यवहार, सज्जन, भेदभाव, वर्णाश्रम, अन्य सामाजिक संदर्भ

साखियों में सामाजिक तत्व

किसी भी देश का साहित्य अपने युग के जनजीवन का सच्चा प्रतिबिम्ब होता है । साहित्य के अन्तर्गत लोकचेतना का इतिहास अन्तर्निहित रहता है । साखी साहित्य में जन-जीवन, लोक जीवन का विभिन्न उतार-चढ़ाव, विभिन्न शासकों का शासन काल उनके द्वारा किए गए भले बुरे कार्यों का अवलोकन मुख्य विषय होता है । जहाँ एक ओर इस साहित्य में सामयिक चेतना के दर्शन होते हैं वहाँ दूसरी ओर यह साहित्य आने वाली पीढ़ियों को चेतना भी प्रदान करता है । इस साहित्य के रचयिता समाज के सजग, सचेत प्रहरी थे । समाज के भ्रष्ट एवं अव्यावहारिक परम्पराओं केे दूषित वातावरण को मिटाकर नवजागरण का स्फूर्तिला वातावरण स्थापित करना भी साखी रचयिताओं का एक और मुख्य उद्देश्य था ।

गुजरात का मध्यकाल राजनैतिक अस्थिरता, सामाजिक वर्ण भेद, धार्मिक मतभेद, छुआछूत, लोगों के मन में वहम की भावना, भूत प्रेत में विश्वास और आर्थिक विपन्नता से त्रस्त था । उच्चवर्ग में लंपटता, विषय लोलुपता विकराल रूप में व्याप्त थी । गुजरात पर प्रभुत्व स्थापित करने के लिए मराठा तथा मुगल आपस में लड़ते रहे । इसका दुष्परिणाम यहाँ की जनता को भोगना पड़ा । शताब्दी के मध्यभाग में जबकि मुगल बुरी तरह से निष्काषित कर दिए गए तो कुछ समय के लिए नाम मात्र को शान्ति स्थापित हो सकी । लेकिन फिर पेशवा और गायकवाड़ की प्रतिद्वन्दिता घातक रूप धारण किए रही । कोली तथा दूसरी लूटरी जातियों ने इस स्थिति का लाभ उठाया ।[1] अतः कहा जा सकता है मध्यकाल में गुजरात में राजनैतिक अस्थिरता अपने पूरी जोर पर थी ।

---

(1) दयाराम और उनकी हिन्दी कविता - (पृ0 292)

गुजरात में भक्ति का विशेष साहित्य ई0स0 13 वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में उपलब्ध हुआ ऐसा प्रतीत होता है । 13वीं शताब्दी के आस-पास नामदेव और रामानन्द गुजरात भ्रमण के लिए आए थे ।[1] अतः कबीर के गुजरात भ्रमण के पूर्व एक स्पष्ट धार्मिक दृष्टिकोण लोगों के मन में स्थापित हो चुका था । समाज में हर धर्म के लोगों में धार्मिक चेतना जागृत हो चुकी थी जिससे हर जाति और धर्म के लोग सक्रिय रूप से मध्ययुग के धार्मिक कार्यों में भाग लेने लगे । पंडित मौलवी आदि धार्मिक लोग अपने धर्म के आचारों का प्रचार-प्रसार करने में व्यस्त रहते थे जिससे धर्म का सच्चे अर्थ में प्रयोग होना कम हो गया । आपसी संघर्ष और वाद-विवाद की अधिकता होने के कारण समाज में कलहपूर्ण वातावरण व्याप्त रहता था ।

अंग्रेजी सभ्यता के प्रभाव के कारण सुधार की भावना में गति आई । उस युग के कवि, संत, आलोचक और विचारक इस रंग में रंगने लगे । साखीकार समाज के जागरूक साहित्यकार थे । वे समाज के मध्य रहकर साधना करने के समर्थक थे । ये लोग अधिकतर गृहस्थ थे । गृहस्थ जितना भी समाज से उदासीन रहने का प्रयत्न करे फिर भी वह समाज से अलग नहीं रह सकता । यही कारण है कि संत लोग समाज से विरक्त होते हुए भी उससे उदासीन नहीं रह सके । अतः समाज की वास्तविक परिस्थितियों का उन्हें पूरा ज्ञान था । समाज की गति-विधियों, स्वरूप, आवश्यकताओं का उन्हें पूरा बोध था । भटके हुए लोगों को सच्चाई के पथ पर अग्रसर होने का उपदेश देने के लिए ईश्वरपरक दृढ़ विश्वास पर ज्ञानी, दादू, नरसिंह महेता, निर्वाण साहब आदि मध्यकालीन भक्त कवियों ने अधिक महत्त्व दिया । धार्मिक और नैतिक सुधार के लिए इन संतों ने समाज में रहकर अपनी रचनाओं के द्वारा लोगों में परिवर्तन लाने का सन्निष्ठ प्रयास किया ।

संत समाज और संसार से, चेतना की दृष्टि से अनेक उच्चस्तर के थे । अतः ये जो भी कार्य करते इसका एक मनोवैज्ञानिक आधार होता है । नीति का सशक्त धरातल होता है । इनकी संयमित सुविचारी स्थिर गति से समस्या-समाधान करने की क्षमता ने ही इनको अपने कार्य में सफलता दिखाई है ।

----

[1] राम कबीर सम्प्रदाय - [पृ0 17]

3

मध्यकाल में गुजरात एक ऐसे राजनैतिक धार्मिक और आर्थिक विपन्नता से गुजर रहा था, जिसने समाज के प्रत्येक वर्ग के लोगों को प्रभावित किया । स्त्री-पुरूष निर्विशेष से यह समाज में अशान्ति फैलाता रहा । अत्याचारी और तामसी वृत्ति की अधिकता होने के कारण लोगों के दैनिक जीवन में भी अस्थिरता आ गई । लोग स्थिरचित्त होकर अपनी धार्मिक और सामाजिक उन्नति के लिए सोचना भी नहीं चाहते थे । सत्भाव और विवेकशीलता के अभाव के कारण चोरी और डकैती जैसे असत् कार्य प्रतिदिन की घटना बन गई । इस प्रकार अनेक प्रकार की विरोधात्मक परिस्थितियों से निजात पाने के लिए संतों ने सामाजिक उत्थान हेतु अनेक साखियाँ लिखी । इनकी साखियों में युगीन सामाजिक जीवन का वैविध्यपूर्ण प्रतिबिम्ब स्पष्ट परिलक्षित होता है ।

मध्यकालीन गुजरात में व्याप्त अशान्त परिवेश का सबसे अधिक शिकार नारी वर्ग हुआ । शिक्षा का अभाव होने के कारण विवेकशीलता का अभाव था । पुरूष के दबाव में रहने के कारण आत्मरक्षा की भावनाओं का अभाव था । अतः वे मूकभाव से समाज के प्रत्येक वर्ग के लोगों का अत्याचार सहन करती थी । संतों ने नारी वर्ग की इस कष्टकर स्थिति का निराकरण करने का प्रयत्न किया । अपनी रचनाओं में समाज के असमीचिन कार्यों को उजागर कर उसे लोक समक्ष लाने का सफल प्रयास किया ।

उस समय का समाज ऐसा चाहता था कि ऐसा कोई सशक्त आधार मिले जो लोगों में लुप्त चेतना जागृत कर सके । संतों ने नारी को सुरक्षा प्रदान करने के लिए उपदेशात्मक साखियाँ रची जिससे जनता में सुधार चेतना जागृत हो ।

संतों ने अपनी साखियों में नारी के उचित एवं अनुचित दोनों रूपों को दर्शाया है । इनकी साखियों में नारी समस्याओं का समाधान तथा नारी की मर्यादा की रक्षा दोनों ही वर्णित है । उपलब्ध साखियों के आधार पर नारी के विभिन्न रूपों का अनुशीलन करने का प्रयास किया गया है ।

नारी के विविध रूप :

अपने तथ्यों का निरूपण संतों ने "नारी निंदा को अंग", "व्याभिचारिणी को अंग" आदि विभिन्न शीर्षकों के अन्तर्गत किया है । अधिकांश संतों ने नारी को अध्यात्म के पथ पर बाधा माना है । गुजरात के भक्त कवि नरसिंह मेहता ने अपनी पत्नी की मृत्यु पर तनिक भी खेद प्रकट नहीं किया अपितु भगवत भजन की बाधा दूर होने के कारण -

भलु थयु भांगी जंजाल,
सुखें भजसुं श्री गोपाल ।।[1] कहा ।

प्रीतम के अनुसार नारी तृष्णा को बढ़ाने वाली होती है, अनेक अवगुणों का मूल भी है । कभी-कभी यह मानव के प्राणों के लिए घातक भी बन जाती है ।[2] ऐसा शायद प्रीतम ने समाज में बढ़ती वेश्यावृत्ति तथा कुपथगामी नारियों को देखकर ही कहा होगा क्योंकि इस प्रकार की स्त्रियाँ परमेश्वर प्राप्ति तथा ब्रह्मविद्या अर्जन के पथ पर बाधा स्वरूप मानी जाती है । भारतीय नारी जहाँ देवी और उदात्त गुणों की प्रतीक होकर समाज में प्रतिष्ठा पाती है वहाँ मर्यादाविहीन और अनैतिक पथ का अनुसरण करने पर निन्दनीय भी हो जाती है ।

असत् नारी :

नारियों का जितना सम्मान आर्य जातियों ने किया कदाचित् वैसा सम्मान किसी जाति ने नारी के प्रति नहीं दिखाया है । वे सदा नारी के प्रति उदार रहे । स्त्रियाँ घर की स्वामिनी हैं इस आदर के साथ नारी को कर्तव्य के प्रति सजग करने का प्रयास भी साखीकारों ने किया है । कुकर्म के लिए जहाँ उत्तेजना मिलती है, नारी वहाँ निन्दनीय है : क्योंकि यह मार्ग तृष्णाओं का मार्ग है । जिसका अन्त नहीं । यही कारण है कि संतों ने अपनी साखियों में नारी से सावधान रहने का संकेत किया है ।

---

§1§ हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में गुजरात का योगदान §पृ0 234§

§2§ प्रीतम वाणी - §पृ0 18§

5

संत अखा के जीवन में नारी का महत्वपूर्ण स्थान है । नारी इनके जीवन में अभिशाप बनकर आयी । माता, बहन तथा पत्नी के रूप में नारी इनके मन को बहला नहीं पायी ।[1] इनके दुष्यव्यवहार के कारण अखा गृहत्याग कर विरागी हो गये । विशुद्ध स्नेह और वात्सल्य का इनके जीवन में अभाव था । अगर यह कहा जाय कि मध्यकाल के शिरोमणी संत अखा को अध्यात्म के पथ पर उन्मुख करने का श्रेय नारी को दिया जाय तो अत्युक्ति नहीं होगी । अत: नारी के असत् रूप ने समाज के एक महान विभूति को जन्म दिया ।

अखा ने अध्यात्म पथ में बाधक के रूप में मायारूपी नारी की कटु-भर्त्सना की है । उनका कहना है कि नारी को पुरूष की सम्पत्ति से ही मोह होता है । सम्पत्ति के नष्ट होने पर तुरन्त ही वह उस पुरूष का साँग छोड़ देती है ।

"जेम वेश्या निर्धन ने तजे" कहकर इस उक्ति की पुष्टि की है । असत् नारी के चरित्र को और भी स्पष्ट करने के लिए अखा ने कहा -

"ज्यूं कुल्टा कंथ ने तजै, चाहत निशिदिन जार ।"

अखा के समय में कुछ परिवारों में और जातियों में लड़कियों की बाल हत्या का प्रचलन था, शासक वर्ग द्वारा उनका अपहरण, वैश्यावृत्ति का प्रचलन तथा मीना बाजारों में उनका क्रय-विक्रय आदि कुप्रथाओं का प्रचलन था ।[2] इन विषयों को जनता के समक्ष उद्घारित करने के लिए अखा ने अपनी साखियों में इन विषयों को स्थान दिया । अखा ने पति के संग सदा एक रस होकर रहनेवाली स्त्री को ही पतिव्रता कहा है, और जो असत् नारी है वही हर पल अपना रंग बदलती रहती है -

सती सोहागन है सदा जिन्ह जान्या पियु संग ।
असति रांड जाही पल पल पलटे रंग ।।

---

(1) हिन्दी भाषा और साहित्य के विकास में गुजरात का योगदान - (पृ0 235)

(2) कबीर और अखा की विचार धारा का तुलनात्मक अध्ययन (पृ0 381)

मनुस्मृति में भी नारी के इसी रूप की चर्चा की गई है -

पति हित्वापकृष्टं स्वमुत्कृष्टं या निषेवते ।
निन्द्यैव सा भवेल्लोके परपूर्वेति चोच्यते ।।[1]

वह स्त्री जो पति को छोड़कर दूसरे पति का आश्रय लेती है वह संसार में तिरस्कृत तो होती ही है और लोग उसे पुनर्विवाहित स्त्री कहते हैं ।

अत: गुजरात के साखीकारों ने नारी के पौराणिक पवित्र रूप को ही स्वीकार करने का, तथा आदर्श रूप प्रमाण करने का प्रयत्न किया है । अखा की साखियों में इसी भाव की प्रधानता है ।

व्यभिचारिणी :

व्यभिचारिणी के स्वभाव की निन्दा गुजरात के संतों ने विशेष रूप से की है । समाज का वातावरण स्वास्थ्य रहे इसलिए कुल्टा एवं व्यभिचारिणी स्त्री का समाज से बहिष्कार होना ही श्रेय है । वस्ता ने ऐसी नारी को "अणगमती" कहकर संबोधित किया है । अपने दुष्ट स्वभाव के कारण वह अपने पति से सम्मान नहीं पाती है । अत: उसका साज-श्रृंगार सब धरा रह जाता है । कवि का संकेत स्त्री की सद्भाव भावना गुणवत्ता को प्रकाशित करना है । क्योंकि एक गुणवती स्त्री ही अपने पति को सत्कार्य के लिए प्रेरित कर सकती है । अत: गुजरात के साखिकारों ने स्वभाषा में नारी केके व्यभिचारिणी रूप का भरसक प्रत्याख्यान किया है -

अणगमती नारीकु स्वामी न लगावे अंग,
शणगार सजे ते आपसु उलटा बगाड़े रंग । 7
- वस्ता नी साखियों मिथ्या ज्ञानी

संत दादू ने भी व्यभिचारिणी की निंदा की है -

---

[1] मनुस्मृति अध्याय 5 श्लोक संख्या 161 पृ0 109

करामति कलंक है, जाके हटमें एक ।
अति आनन्द विभाचारिणी, जाकै खसम अनेक ।।

व्यभिचारिणी की दशा का निरूपण करते हुए ज्ञानीजी कहते हैं कि वह बिलखती हुई घुमती है परन्तु उसकी गुहार सुननेवाला कोई नहीं होता क्योंकि वह समाज के नियमों में खरी नहीं उतरती अत: वह असत् नारी के रूप में जानी जाती है । उसके कथनों का कोई विश्वास नहीं करता -

व्याभीचरणी विलखत फिरे । कहै एक की चार ।
ग्यानी सौ क्यों चितधरैं । महैली माथै मार ।। 2
-बिभीचारणी कौ अंग

रविसाहब, भाण साहब के प्रमुख शिष्य थे । उन्होंने अपनी साखियों में नारी के व्याभिचारिणी रूप का वर्णन करते हुए यह प्रदर्शित किया है कि भक्ति भाव से हिन नारी निंदनीय है । ईश्वर भक्ति में रत स्त्री सदा हितकार्य ही करती है । अत: अस्त स्त्री समाज में निन्दा की पात्रा बनती है । स्त्रीत्व के प्रति अनाचार और भक्ति के प्रति उपेक्षा की भावना से नारी समाज में अनादृत हो गई । इस ओर गुजरात के साखिकारों का ध्यान आकर्षित हुआ और उन्होंने नारी के इसी भाव की भर्त्सना की है -

भक्ति बिना रवीदास कहे, नारी नंदीक होय,
व्याभिचारण वीचलेते, मन करी कमाणी वोय ।
- रवीभाण सम्प्रदाय (पृ0 27)

कामिनी रूप :

गुजरात के संतों ने नारी के कामिनी रूप को हेय माना है । परिवार में, समाज में, व्यक्ति के जीवन में नारी का स्थान गौरवपूर्ण और महत्व का है । अत: नारी की स्थिति और उसकी समस्याएं विचारशील समाज की चिन्ता का आवश्यक विषय है । प्रीतमदास नारी के कामिनी रूप की निंदा करते हैं । उसकी तुलना उस नागिन से करते हैं जो नर को मेंढ़क की तरह निगल लेती है । नारी के कमनीय रूप की आड़ में नागिन का स्वरूप छिपा होने के कारण वह ताज्य है -

नारी नहीं ए नागिनी, नर मेंढ़क निरधार ।
कहे प्रीतम कैसे ग्रसै, लेखा नहीं लगार ।।

सूरत के संत निर्वाण साहब ने भी नारी के कामिनी रूप की निंदा की है । समाज में ऐसी नारियों का स्थान निम्न स्तर का होता है । इसी भावधारा में बहकर कवि कहते हैं कि दुष्ट प्रकार की नारी की संगत करने पर आत्मा को गति नहीं मिलती है क्योंकि जब सर्प जैसा क्रूर जीव कामिनी नारी की छाया पड़ने पर अंधा हो जाता है तो मानव की गति क्या होगी जो नित्य इस प्रवृत्ति वाली स्त्रियों की संगत करता है -

"यही नारी की छांयने, अंधे होय भुजंग,
गाफिल तेरी कौन गत, नित नारी के संग । ‡पृ0 852‡

अत: इस प्रकार के नारी के फंदे से दूर रहने की शक्ति मानव में होनी चाहिए । विचारशील, नेक व्यक्ति स्वत: ही भुजंग की गति नहीं प्राप्त करना चाहेगा ।

"कहत साँईं निरबान, फूंद में काहे फसाये
अंधे होत भुजंग, पड़त नारी की छाये ।। ‡पृ0 852‡

कामिनी अध्यात्म पथ में बाधक के रूप में वर्णित है । अत: उसकी संगति से बचना चाहिये । क्योंकि वह भक्ति, मुक्ति और ध्यान, इन तीन गुणों के द्वारा ईश्वर प्राप्ति सम्भव है, उन्हीं गुणों का नाश करवाती है -

"भक्ति,मुक्ति अरू ध्यान,नसावे तीन गुण नारी" ‡पृ0 852‡

यहाँ तक कि निर्वाण साहब ने नारी के कामिनी रूप को "विषफल" की उपमा दी है । इसको देखकर ललचाने वाले का विनाश निश्चित है अत: कवि जन समाज को इस विषाक्त फल से दूर रहने की सलाह देते हैं ।

कनक कामिनी देखके, मन नाहि ललचाय
वावरे ये ही विषफल, कैसे कहु समझाय । ‡पृ0 860‡

"सो ही साधु के चरण में प्रेमे झूके निरबान"   ¤पृ0 86।¤

कहकर निर्वाण संत पुरुषों की श्रेष्ठता प्रतिपादित करते हैं। आत्मसंयम को महत्व देते हैं।

नारी के विविध रूप की गुजरात के साखी रचयिताओं ने संकेत किया है तथा निन्दनीय आचार व्यवहार की घोर निन्दा की है। विशेषतः "पुरुष मनोहर निरखहि नारी" को असामाजिक माना है। दादू की "करामती कलंक है जाके खसम अनेक" साखी में यही भाव निहीत है।

स्पष्ट है गुजरात के साखी सर्जकों ने असत् नारी की निंदा की है परन्तु इस निन्दा में नारी के उच्चतम् हृदय, पवित्रतम् विचार, पवित्रतम् देवी रूप एवं स्नेह वात्सल्ययुक्त मातृरूप की निन्दा नहीं की है। काम, प्रेरिका, भक्तिहिना नारी की निंदा की है। हमारे विचार से नारी निंदा का उद्देश्य केवल इतना ही है कि गृहस्त परस्त्री का परित्याग करें तथा ईश्वरोपासक, ब्रह्मचारी संन्यासी नारी मात्र का त्याग कर सुसभ्य समाज की स्थापना में सहयोग दें। इस दृष्टि से अगर देखा जाय तो गुजरात के साखिकार इस प्रयास में सफल रहें।

सत् नारी :

भारतीय धर्म और समाज में नारी मर्यादा सदा से उत्कृष्ट मानी जाती रही है। हिन्दू धर्म और संस्कृति में नारी के आदर की भावना वर्तमान है। गुजरात के साखिकारों ने नारी के पतिव्रता, उच्चादर्श, त्याग, गौरव आदि गुणों का अभिनन्दन किया है। उसके कल्याणकारी रूप की प्रशंसा की है।

नारी के पतिव्रता रूप का चित्रण गुजरात के साखिकारों ने बड़े कौशल के साथ किया है। पतिव्रता की गरिमा, रूप सौन्दर्य-शील की ज्योत्सना और चरित्र की महिमा नारी के जीवन को सार्थक बनाती है। अखा के मतानुसार पतिव्रता वही है जो सदा सत्य बोलती है और अपने पति की सेवा में लीन रहती है। नारी का एक ही व्रत होता है - पतिसेवा। वह जीर्ण वस्त्रों में भी सन्तुष्ट रहती है। ऐसी पतिव्रता नारी की बराबरी वैश्या कैसे कर सकती है ?

अखा ने समाज में पतिव्रता नारी का आदर्श स्थापित करने का प्रयास किया है । वह मन, वचन और कर्म से पति प्रेम में दत्तचित्त होती है । अत: पतिव्रता नारी का स्थान समाज में ऊँचा होता है -

पतिव्रता ते जे पियु ने भजे, आनअभ्यासे अवरने तजे ।
तेना वस्त्रो साँध्या जेम तेम, तेनी बरोबरी वेश्या करशे केम ।।

पतिव्रता नारी की सराहना करते हुए जीवणदास ‍(राम-कबीर) जी कहते हैं पतिव्रता स्त्री सदा पति का साथ देती है । पति की सेवा में सदा रत रहती है । स्त्री को पति के प्रति अनन्य स्नेह रखते हुए अपने कर्तव्यों को नहीं भूलना चाहिये -

पियु रत जाणी नहीं जीवणा । और कहावे सोहागण नाम ।[1] 7

राम कबीर सम्प्रदाय के जीवण जी महाराज पतिव्रता नारी का बखान करते हुए कहते हैं कि वह पतिव्रता की सेवा चाकरी करना अपना सौभाग्य समझती हैं, वह पति को परमात्मा मानती है और जिस प्रकार सीता ने कभी भी राम का संग नहीं छोड़ा उसी प्रकार पतिव्रता कभी अपने पति का संग नहीं छोड़ती । ऐसी पतिव्रता स्त्री पति की अनुगामी बनकर उसके प्रत्येक कष्ट को झेलती है । ऐसी स्त्री की बलिहार लेने के लिए जीवणदास तत्पर हैं -

पतिव्रता जो मिले जीवणा, मैं रहु ताकी लहार,
लक्ष्मण सहित संग जानकी, सदा उनकी अनुहार ।[2]

जीवणदास पतिव्रता नारी को अपना आदर्श मानते हैं । योगियों में शून्य के प्रति जो तन्मयता देखी जाती है वही तन्मयता आदर्श नारी की पति के प्रति होती है । अत: योग, जप, तप के महत्व से पति-लीन नारी का महत्व कम नहीं । इसी तथ्य को स्पष्ट करने के लिए जीवण कहते हैं -

पतिव्रता पर जीवणा, मैं वारूँ तन मन प्राण । (पृ0 141)

---

(1) अथ श्री व्याभिचार कौ अंग - (पृ0 160)
(2) पतिव्रता कौ अंग - (पृ0 141)

जीवणदास ने नारी स्वभाव, नारी कर्तव्य और नारी धर्म की व्याख्या अपनी साखियों में शास्त्रों के आधार पर की है । नारी की प्रतिष्ठा और मान मर्यादा का मूल्य पतिव्रत और पतिभक्ति ही है । पति के प्रति सेवाभाव और पत्नी के प्रति निष्ठा को जीवणदास ने भौतिक जीवन की समृद्धि का पहला कदम माना है । इसी उद्देश्य से कवि कहते हैं -

पतिव्रता मैली भली ।। काली कुचील कुरूप ।।
पतिव्रता पर जीवणा।। वारूं कोटी स्वरूप ।।[1] ४

जीवणदास की साखियों में नारी दया, प्रेम, स्नेह, परोपकार, जीव-सेवा, संयम और मानवीय आदर्शों की खान के रूप में वर्णित है, जो धर्म पथ पर कर्तव्य का पालन करती हुई मानव जीवन को सुखपूर्ण बनाती हुई मानवीयगुणों की पवित्र प्रतिमा बन जाती है । ऐसी पतिव्रता स्त्री अपनी सब सखियों के मध्य छिन्न वस्त्र और आभूषण-विहीन अवस्था में भी "उधड़न में शशी" की तरह शोभा पाती है । वस्त्र और आभूषण का मोह स्त्री को नहीं रखना चाहिये । भौतिक वस्तुओं के मोह में पड़कर नारी नरकगामी बन सकती है । अत: उसे सच्ची राह दिखाने के लिए जीवणजी ने उसके गुणों को अधिक महत्व दिया है -

पतिव्रता फाटे लुगड़े । कंठन घाली पोत
सब सखियन मा जीवणा । जैस उधड़न में शशी जोत ।।[2] 5

दादू ने मर्यादायुक्त पत्नी को अधिक महत्व दिया है । पत्नी में सेवा भाव हो, क्योंकि गृहस्थाश्रम की सफलता पर ही सांसारिक सुख और शान्ति अवलम्बित है । अत: दादू ने सुन्दरी स्त्री से मर्यादायुक्त नारी को अधिक महत्व दिया है । वह समाज में सम्मान की अधिकारिणी है -

दादू नीच ऊँच कुद सुन्दरी, सेवा सती होई ।
सोई सुहागीन कीजिए रूप न पीजे धोई ।।[3] 6

----

(1) पतिव्रता को अंग (पृ0 141)

(2) उदाधर्म पंचरत्न माला (पृ0 141)

(3) उदाधर्म पंचरत्न माला (पृ0 184)

दादू के अनुसार पतिव्रता अपने पति की अवस्तानुरूप रहती है । क्योंकि आदतानुसार वह आज्ञाकारिणी होती है । दादू ने आज्ञाकारी होना नारी का एक विशेष गुण माना है । दाम्पत्यजीवन का आधार एक आज्ञाकारिणी पत्नी होती है । पति पत्नी का प्रेम, एक दूसरे के हृदय में प्रेम और निष्ठा की भावना के बिना असम्भव है । यह एक तरफ जहाँ जीवन को सरल और सुखद बनाते हैं वहाँ दूसरी तरफ अनाचार, व्यभिचार को रोक कर समाज का कल्याण करते हैं । नैतिक उत्कर्ष तथा धार्मिक कृत्यों की प्रवृत्ति को स्पष्ट करना ही दादू का मुख्य उद्देश्य था । मुसलमान शासकों के साम्राज्य में नारी को रक्षा की अति आवश्यकता थी । नारी को भोग्या के रूप में प्रयोग करनेवाले मुसलमान शासकों के हाथ से निजात दिलाने के लिए संतों ने अपनी वाणियों में स्थान-स्थान पर उनकी सुरक्षा, महत्ता तथा गुणका उल्लेख किया है -

पतिव्रता गृह आपणे, करे खसम की सेव ।
ज्यों राखे त्यौं ही रहे आज्ञाकारी टेव ।। 5
- निह कर्मी पतिव्रता को अंग

जीवन वहाँ जीने के योग्य हो जाता है जहाँ सभी परस्पर स्नेह भाव रखते हो । गुजरात के साखिकारों ने पतिव्रता के प्रेम मधुर दाम्पत्य के आधार रूप में उल्लेख किया है । उसे सुख-समृद्धि हर्ष का व्यंजक कहा है । गुजरात के साखिकारों ने पत्नी के लिए पतिव्रता से बढ़कर कोई धर्म नहीं माना । पत्नी के लिए पति ही परमात्मा है, सब कुछ है, धर्म कर्म, नियम तपस्या । जो पत्नी इनका पालन करती है वह "परमगति" को प्राप्त करती है । पतिनिष्ठा द्वारा स्त्री पति पर विजय प्राप्त कर स्वयं दिव्य और महान बन विभूति बन जाती है । इन गुणों को उद्भाषित करने में गुजरात के साखिकारों ने बड़ी कुशलता का परिचय दिया है । संस्कृत के लब्धप्रतिष्ठ कवि व्यास, कालिदास, भवभूति आदि की परम्परा की रक्षा गुजराती संत कवियों ने की है । पत्नीत्व की गरिमा, रूप सौंदर्य की छटा और चरित्र की महिमा नारी जीवन को सार्थक बनाती है । नारी के पतिव्रता रूप का पूर्ण चित्रण करके उन्होंने नारी के महत् और आदर्शभाव को स्पष्ट किया है । परिव्रता धर्म का पालन यज्ञ और ईश्वर की आराधना से कम महत्त्व नहीं रखता । अत: साखिकारों ने इसी भाव को अधिक महत्त्व दिया है ।

धर्म समन्वय :

गुजरात के संतों-भक्तों ने एक और महत्तकार्य यह किया कि हिन्दू और इस्लाम के धार्मिक समन्वय की भावना को महत्व देते हुए साखियों की रचना की । मानवधर्म को प्रधानता देते हुए मध्यकालीन कवियों ने धर्म निरपेक्षता को अधिक महत्व दिया । ईश्वर - अल्लाह में भेदभाव को न मानकर केवल मानवीय संवेदना को ही श्रेष्ठ माना है । धर्म को समाज की आवश्यकता न मानकर समाज का एक अभिन्न अंग माना है । धर्म हमें समानता, शान्ति और स्थिरता का संदेश देता है । अतः धर्म निरपेक्षता की भावना का प्रसार करके मध्यकालीन संत कवयित्री अनिसा ने कहा है -

"अनिसा" को पहचानिया, बहुनामी तू ही एक ।
हिन्दू कहाँ, ईस्लाम कहाँ साहिब सबका एक ।।[1]

एक मुसलमान परिवार की लड़की होने के कारण समाज में धार्मिक असमानता को अनिसा ने स्वयं अनुभव किया था ।

संत कवयित्री हुरा देवी ने भी हिन्दू मुसलमान के भेदभाव की निंदा करते हुए कृष्ण - करीम तथा राम और रहिम की समानता को अधिक महत्व दिया है । जिसकी सहायता के बिना इस भवसागर से पार पाना असम्भव हो उस ईश्वर या अल्लाह में भेदभाव करना उचित नहीं है । राम और रहिम जैसे हजार नामों से अभिहित होने वाले सर्वव्यापी का भजन करना ही भक्त का एक मात्र लक्ष्य होना चाहिए ।

साईं तेरा कैसे लहुरी पार - - - - - - - ।।टेक।।
कृष्ण, करिमा, राम, रहिमा, तेरे नाम हजार ।।१।।[2]

---

§1§ सुरत की कवयित्रियाँ - कान्ति कुमार सी भट्ट §पृ0 3§
§2§ सुरत की कवयित्रियाँ - कान्ति कुमार सी भट्ट §पृ0 165§

संत दादू अपने युग के एक बड़े साम्यवादी भक्त थे । अपने युग की धार्मिक विषमताओं को मिटाने के लिए उन्होंने अन्त तक प्रयास किया । धार्मिक एकता की भावना को अधिक महत्व देते हुए दादू ने हिन्दू और मुसलमान दोनों को फटकारा है । जहाँ एकता है वहाँ बल है । अतः धार्मिक एकता की भावना को जनता के समक्ष उजागर करना ही दादू का प्रधान उद्देश्य था । इनकी साखियों में दोनों धर्म की कटु आलोचना है । परन्तु इस कटुता में निहित भेदभाव और वैमनस्य की निंदा के मूल में सर्वमानव प्रेम ही छिपा हुआ है । दादू के अनुसार धर्म हमें एक होकर रहने की शिक्षा देता है -

"दादू ना हम हिन्दू ना हम मुसलमान" कह कर धर्म समन्वय का पाठ पढ़ाया है । विभिन्न धर्मों में ईश्वर की आराधना के मार्ग भिन्न है । हिन्दू मंदिर में जाते है और मुसलमान मस्जिद में परन्तु उद्देश्य दोनों का एक ही होता है केवल माध्यम भिन्न है । अतः संतों ने दोनों धर्मों के प्रति आदर का भाव रखते हुए प्रेम और प्रीती का पाठ पढ़ाया है इसी भाव से प्रेरित दादू की कुछ साखियाँ प्रस्तुत हैं -

"दादू करणी हिन्दू तुरक की, अपणी अपणी ठौर ।
दुहु विधि मारग साध का, यहु संतों की रह और ।।[1]
दादू हिन्दू लागे देहुरा मुसलमान मसीति ।
हम लागे एक आलेख सौ, सदा निरन्तर प्रीति ।।[2] 9

भक्त कवि नाथाजी इसी भाव धारा में बहकर विमल हृदय से गा उठते हैं -

राम कहो रहीमा कहो, कृष्ण करीमा एक,
"नाथाजी"को देखियाँ, साहिब सबका एक[3] 5

---

(1) संत सुधा सार - मधि को अंग - (पृ0 292)
(2) संत सुधा सार - मधि को अंग - (पृ0 292)
(3) संत कवि नाथाजी - (पृ0 294)

प्रत्येक घट में नाथाजी एक ही परमात्मा का वास होना कहते हैं । दूरा देवी की भावधारा में बहकर कवि उस परमात्मा के अनेक नामों का उदाहरण देते हैं और उनके नाम रूपी भिन्नता को अर्थ हिन बताते हैं । हिन्दू और मुसलमानों की साधना के मार्ग में भिन्नता होने पर भी ईश्वर प्राप्ति का लक्ष्य एक है । "अपने-अपने पंथ का सबही करे बखान" कहकर नाथाजी धर्म विषयक कट्टरता का स्पष्ट किया है । उनके कहने का तात्पर्य यह है कि अगर प्रत्येक धर्म के अनुयायी इसी भाव से प्रेरित होकर चलें तो समाज में शान्ति का वातावरण नष्ट हो जायेगा । कवि ने धार्मिक सहिष्णुता पर अधिक बल दिया है । मंदिर के अन्दर जो परमात्मा है उसकी बन्दगी को संतों ने अधिक महत्व दिया है । बाहरी दिखावे पर नहीं । इस्लामी शासकों के डर से लोग हिन्दू धर्म के आदर्शों को भूल रहे थे । बहादुरशाह जैसे क्रूर शासकों को केवल मुसलमानों की संख्या वृद्धि करना ही शासन का मूल मंत्र बनाया था । चाहे वह छल या बल से हो । मंदिर को तोड़कर कई स्थानों में मस्जिद बनाने का भी प्रचलन दिखाई पड़ता है । पावागढ़ की काली मंदिर इसका उत्कृष्ठ उदाहरण है । मंदिर को इस प्रकार बनाया गया है कि देखने पर लगता है यह एक मस्जिद है । इस्लामों के आक्रमण से त्रस्त जनता ने इसे मस्जिद का रूप दिया है ।

यहु मसीति यहु दे हुए, सत गुरू दिया दिखाई
भीतरि सेवा बंदगी, बाहरी काहे जाई ।।[1] ।।

दादू की इस साखी से उपरोक्त भावों की पुष्टि होती है ।

मध्यकाल में कुछ इस्लामी बादशाह ऐसे थे जो हिन्दू धर्म का आदर करते थे और हिन्दू धर्म के प्रचार-प्रसार में सहयोग भी देते थे ।

लखनऊ के बादशाह वाजीदअली शाह के दरबार की मशहूर गायिका शमरू बेगम जब सुरत आयी, हिन्दु धर्म से प्रभावित हुई थी । उन्हें संत निर्मलदास जी (ई०स० 1766 से 1879) का आशीर्वाद प्राप्त हुआ । शमरू बेगम इनसे

----

(1) संत सुधा सार - (पृ० 293)

प्रभावित हुई । संत भक्त कभी भी धर्म के भेदभाव को महत्व नहीं देते हैं । अतः निर्मलदास ने एक मुसलमान गायिका का हृदय परिवर्तन कर उसे ईश्वरोन्मुख कर दिया । महल छोड़कर शमरू बेगम अयोध्या के श्रीराम के जन्म स्थान पर दर्शन करने गई । वहाँ जाकर राम - रहिम के भेदभाव को भूलाकर विमल हृदय से ईश्वर भक्ति में लीन रहने लगी । शमरू ने हिन्दू - ईस्लाम दोनों धर्मों के मूल तत्वों को समझकर उन तत्वों को अपनी रचना का माध्यम बनाया । उनकी रचना का एक उदाहरण प्रस्तुत है -

राम कहत कुफ्र बखानत, रहिमा मुख हरखाई
कृष्ण करीमां राम रहिमा, वही पाक खुदाई ।

मजहब पाक खुदा को खोजो, मोमीन क्या खुदाई
वाजीदअली - तहकीक किया, सबको एक खुदाई । 1

सूरत के महान संत तेजानंद स्वामी भी हिन्दु - मुसलमान की एकता को महत्व देते हुए भेद भाव की भावना के विरुद्ध है । उन्होंने अपने भक्त मंडल में अनेक मुसलमान भक्तों को शामिल किया । अनेक मुसलमान भक्त उनके शिष्य हुए, जिनमें "बलाल" का प्रमुख स्थान है । एक बार उनके आश्रम में "बलाल" नामक एक साधु का आगमन हुआ जो तेजानंद का भक्त था । बलाल के आगमन को हिन्दु साधुओं ने अस्वीकार किया । कई साधु उसकी भर्त्सना करने लगे । तेजानंद ने आकर आश्रम के अशान्त वातावरण को शान्त किया और साधुओं के हृदय को पवित्र बनाते हुए कहते हैं -

साधु बड़े अज्ञान हो, बलाल पेरवे बीन
वे बंदे साहिब के, तुमी तो मतिहिन ।।

साहिब से यारी लगी, कहाँ हिन्दवा कहाँ दीन,
चाहे साधु फकीर है, बंदगी प्यारी प्रवीन ।। 2

---

(1) संत निर्मलदास जी - माणेकलाल राणा - (पृ. 236).
(2) संत तेजानंद स्वामी - माणेकलाल राणा - (पृ0 51)

अमीर-गरीब, हिन्दु-मुसलमान के भेदभाव को मिथ्या बताते हुए तेजानंद ने अपनी भक्त मंडली को उपदेश दिया कि दोनों धर्म के लोग ईश्वर को प्यारे हैं । ईश्वर के प्रति बंदगी को ही महत्व दिया जाता है ।

दिल्ली मुगल बादशाह अकबर के वजीर राजा टोडरमलजी भी तेजानंद की भक्ति भावना से इतने प्रभावित हुए कि "खरवासा" जाकर इनका दर्शन किया । तेजानंद ने टोडरमल के सिर पर अपना वरद हस्त रखकर आशीर्वाद दिया और सुरत में इच्छानुसार रहने का आदेश दिया । टोडरमल भी आनन्द सहित खरवासा में कुछ दिन रहे और अपने जीवन संबंधी कुछ समस्याओं का समाधान तेजानंद से पूछा । हिन्दुई संत से भविष्य की बातों का श्रवण करके मुसलमान वजीर दुःखी हुआ परन्तु तेजानंद ने अपनी पवित्र वाणी द्वारा उनको चिन्तामुक्त किया । टोडरमल का हृदय हिन्दु संत की पवित्र वाणी सुनकर प्रसन्न हो गया तथा तेजानंद स्वामी का उपदेश और उसके दुर्लभ संग का लाभ उठाकर दिल्ली यात्रा को तत्पर हुआ । तेजानंद ने टोडरमल को आशीर्वाद देते हुए कहा -

"तेजानंद गुरू ए मिले, टोडर बड़े सुजान"[1]

अकबर द्वारा दिये गये राजकार्य को समाप्त करके टोडरमल दिल्ली लौट गये । उनके मन में सुरत में स्थित तेजानंद के प्रति अपार भक्ति भावना निहित थी । उसी भावना से प्रेरित होकर अकबर से कहा -

टोडर कहत सारे हिन्दु में अनुठे दीखे
मुगल सम्राट तेरी सुहानी सुरत को [2]

हालांकित यह व्याख्या पदों में की गई परन्तु भावों की दृष्टि से प्रासंगिक होने के कारण यहाँ इसे उद्धृत किया गया है ।

सुरत के एक अन्य महान संत महात्मा निर्वाण साहब ने भी हिन्दु-ईस्लाम की समन्वय भावना को अधिक महत्व दिया । इनके भक्तों की संख्या

---

(1) संत तेजानंद स्वामी - (पृ0 253)
(2) संत तेजानंद स्वामी - (पृ0 256)

हजारों में थी जो आश्रम में रहकर भगवत भजन में व्यस्त रहती थी ऐसे महान संत के लिए प्रत्येक धर्म और प्रत्येक सम्प्रदाय उनके निजी सम्प्रदाय होते हैं। विश्व के प्रत्येक मानव का कल्याण करना इनका अंतिम निर्णय होता है। अतः समाज में भेदभाव का वर्जन करना तथा धर्म निरपेक्ष की भावना को मजबूत बनाना ही इन महान आत्माओं का मुख्य ध्येय बन गया।

गुजरात के सुलतानों में महमूद बेगड़ो को श्रेष्ठ बताया जाता था। इन्हें साधु-संतों से अपार प्रेम था। संत निर्वाण साहब ने इन्हें अपनी भक्ति की अपार महिमा से प्रभावित कर दिया था। महमूद बेगड़ों ने हिन्दू धर्म के प्रचार प्रसार तथा इसकी उन्नति के लिए अनेक कार्य किए। मंदिर और मस्जिद दोनों के निर्माण कार्य के लिए राजकोष से आर्थिक सहायता दी जाती थी। हिन्दु और इस्लाम दोनों के धार्मिक त्यौहार बड़े धूम-धाम से मनाए जाते थे। इतर प्रदेशों से साधुओं को बुलाकर संत मेला का आयोजन किया जाता था जिससे लोगों के मन से धार्मिक भेदभाव का लोप हो। इन्हीं के समय में संत निर्वाण साहब की भक्त मंडली लोगों में सदभाव, ईश्वर प्रेम तथा भाईचारे के भाव का प्रचार प्रसार बड़े जोर शोर से कर रही थी। इन्होंने एक हिन्दू सखाराम और मेहेरबानु यवन का विवाह रचवाकर दोनों धर्मों की एकता की मिशाल स्थापित की।

"मैं वम्मव तुम यावनी, प्रीत की हाँसी होई"[1]

की भावना को लोगों के मन से दूर कर दिया। "नाता बड़ा है प्रेम का ताके कौन मिटाय"[2] कहकर निर्वाण साहब ने दोनों को आशीर्वाद दिया।

निर्वाण साहब के समय में (ई०स० 1631 में) गुजरात अकाल ग्रस्त हुआ था। इस समय इनके आश्रम में हिन्दु मुसलमान दोनों की समान रूप से सेवा की जाती थी –

----

(1) संत निर्वाण साहब - (पृ० 745)

(2) संत निर्वाण साहब - (पृ० 745)

"आतिथ्य धाम निर्वाण का, सबका होत सम्मान
भूख दुःख में क्या करे, हिन्दु मुसलमान ।"[1]

निरपेक्ष भाव से लोगों की सेवा करना तथा उन्हें सतमार्ग में चलने की शिक्षा देना गुजरात के साखिकारों का ध्येय था ।

बहिर्गामिता और बाह्याचारों का विरोध :

मूल धर्म सम्प्रदाय में किसी प्रकार का कोई परिवर्तन न हो या वैमनस्य की भावना उत्पन्न न हो इसलिए गुजरात के संतों ने समाज में धर्म विरोधी और असत् लोगों से सावधान रहने के लिए उपदेशात्मक साखियाँ लिखी है । कपटी, वेषधारी, असत् और कुगुरू से सावधान रहने का उपदेश दिया है ।

धार्मिक अशान्ति मध्यकाल का मुख्य अंग बन गया था । धर्म के प्रत्येक क्षेत्र में लोग एक दूसरे के धर्म की तुलना, अवमानना तथा केवल तर्कपूर्ण व्यवहार करने में ही अपनी महानता समझते थे । इस प्रकार के धार्मिक माहौल से समाज को निवृत्ति दिलाने के लिए संतों ने दृढ़ निश्चय होकर रचनात्मक कार्य किए । भाल तिलक लगाकर, धार्मिक ढोंग रचकर भगवत् भजन से लोगों को दूर रखना कुछ लोगों का व्यवसाय बन गया था । अतः प्रदर्शन की भावना से निजात, वेष को महत्व न देना और भूत प्रेत पर विश्वास करने की भावना से लोगों को सचेत करने के लिए संतों ने चेतनात्मक साखियाँ रची ।

वेश :

जीवणदास [राम-कबीर] जी ने वेष को महत्व न देते हुए यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि माला, चन्दन और गुरूआ वस्त्र धारण कर लेने से ही मनुष्य भगवत् ज्ञानी नहीं हो जाता है । लम्बी जपमाला लेकर दिखावे के लिए

---

[1] निर्वाण साहब [पृ0 855]

जपते रहना ही सच्चे भक्त का गुण नहीं है । सच्चा भक्त तो सद्गुरू का दिया मूल मंत्र ही जपता है । अर्थात् गुरू के दिखाए रास्ते पर चलते हुए ईश्वर की भक्ति में लीन रहता है -

लांबी जपमाला जीवणा । दुनिया कु देखलाय ।
अरध नामसु काम है । जे सतगुरू दिया बताय ।।[1] 6

कबीर ने जिस प्रकार वेषधारियों की माला और गुरूए वस्त्र की कटु आलोचना की है उसी प्रकार गुजरात के संतों ने भी दिखावे की माला फेरनेवालों की कटु आलोचना की है ।

जीवणदास के अनुसार जिस प्रकार लोह पारसमणि के स्पर्श से सोना बन जाता है उसी प्रकार असद् व्यक्ति सीता पति के भजन से अपने पापमय जीवन से मुक्त हो जाता है । प्राय: सभी साखिकारों का कहना है कि बाह्य रूप के प्रति आकर्षण अर्थात् दिखावे की भावना को त्यागकर आत्मज्ञान के लिए प्रवृत्त होना चाहिए ।

पारस बिना परसे नहीं । ज्युं लोहा कु पाषाण ।।
सीता पति बिना जीवणा । फोगट भेष और ज्ञान ।।[2] 7

- देवा साहब छापा तिलक से अधिक आत्मलीन होकर राम की आराधना को अधिक महत्व दिया है । बाह्य श्रृंगार से केवल संसार को ही रिझाया जा सकता है उस परमात्मा को रिझाने के लिए निष्ठा अनिवार्य है -

छापा तिलक बनाय के रिझावत् संसार ।।

अखा ने अपनी साखियों में वेष को महत्वहिन माना है । वेष और टेक को धर्म का अंग समझने वालों की अखा ने कटु आलोचना की है । दिखावे के लिए

----

(1) उदाधर्म पंचरत्न माला - अथ श्री वेष को अंग - (पृ0 ।43)
(2) उदाधर्म पंचरत्न माला - (पृ0 ।43)

तिलक और शरीर पर चन्दन का लेप करने वाले जो खुद को वैष्णव भक्त कहते हैं अखा ने उन पर तीव्र व्यंग्य किया है । ऐसे लोगों की तुलना उस कुत्ते से की है जिसमें माथे पर तिलक लगा देने पर भी उसकी काटने की प्रवृत्ति में कोई व्यतिक्रम नहीं आता है । समाज में ऐसे वैष्णव निंदनीय है ।

तिलक बनावत रूचि रूचि हेत नहीं हरी,
जद्यपि टिलुआ स्थान है जात न करनीवान ।।

अखा के अनुसार तिलक लगाने में समय व्यतीत करनेवाले और चींख-चींख कर कीर्तन गाने वालों को वास्तव में वैष्णव नहीं कहा जा सकता ।

संत अखा ने "वेष अंग"[1] की साखी में संत की वास्तविक वेशभूषा और साधना की उदात्त प्रवृत्तियों को उजागर किया है । अखा के अनुसार एक वास्तविक संत को ज्ञान का तिलक लगाना चाहिये अर्थात् एक संत को ईश्वर की आराधना में प्रवृत्त रहकर समाज और परिवेश को परिष्कृत करना चाहिए । मध्य युगीन समाज लोकाचार को ही जीवन का सच्चा मार्ग समझता था । तत्कालीन समाज बाह्याडंबरों के आवरण में ही साधना का सच्चा स्वरूप परख रहा था । वेश को ही अधिक महत्त्व दिया जाता था । गेरूआं वस्त्र पहनकर उच्च स्वर से ईश्वर के नाम जप करनेवालों को सच्चा भक्त कहा जाता था । जिससे अखा, वस्ता, प्रीतम, छोटम, निर्वाण, कंवलदास आदि को सख्त विरोध था । अत: उन्होंने अपनी साखियों में इस प्रथा का कड़ा विरोध करके चेतावनी दी है ।

वस्ता ने माला तिलक के प्रति आकर्षण को छोड़कर ज्ञान प्राप्ति, ईश्वर भजन को अधिक महत्व दिया है । केवल योगी का वेश धारण कर लेने से ही योगी नहीं बना जा सकता इसके लिए साधना और अध्यात्म ज्ञान की सतत आवश्यकता होती है । छाप तिलक धारी संतों से समाज को सचेत किया है -

तन पर तिलक बनाइओ ओ तो ऊपर भेख
तत तिलक सते धर्यो आपे वस्तु अलेख ।।[1] 16

वस्ता पुनः स्पष्ट करते हैं कि भेषधारी अनेक है परन्तु ईश्वर का भेद अर्थात् ईश्वर से परिचय करानेवाले का मिलना मुश्किल है ।

भेखधारी बहु मले भेदी मल्या न कोई ।।[2] ।

रविदास वेश की निंदा करते हुए कहते हैं दाढ़ी मूछ मुंडाकर या बढ़ाकर ईश्वर भक्ति नहीं की जा सकती है । वेश के प्रति उन्मुख होने से पूर्व ईश्वर की आराधना में चेतन शक्ति को उन्मुख करना अधिक महत् माना गया है ।

दाढ़ी मुछ मुड़ाब्बा ही, के राखे सब केश ।
रवीदास मन मुण्या नहीं, क्या बदलाया वेश ।।[3]

कपटपूर्ण व्यवहार :

संत कवियों का समाज के आन्तरिक एवं बाह्य दशाओं के प्रति दृष्टि भी पैनी थी । वे अपनी पैनी दृष्टि से परम्परा में आने वाली समस्त मान्यताओं को किस प्रकार युग के अनुकूल बनाया जा सकता है, का विवेचन करते थे । अतः तत्कालीन परम्पराबद्ध सामाजिक व्यवस्था के प्रति उनके अंतःस्थल में विद्रोह की भावना प्रज्वलित हुई जिसका प्रतिबिम्ब उनकी साखियों में स्पष्ट है। मध्यकाल के अन्तिम भक्त कवि दयाराम ने सज्जन व्यक्ति को श्रेष्ठ समाज के आधार के रूप में व्यक्त किया है । अतः दुर्जन व्यक्ति समाज के अहित और बाधा रूप है इसे स्पष्ट करने का प्रयास अपनी साखियों द्वारा किया है । दोनों प्रकार के

---

(1) वस्ता नी साखियों - अंग संत भेद को - ह०लि०प्र०
(2) वस्ता नी साखियों - अंग संत भेद को - ह०लि०प्र०
(3) रवीसाहब नी साखियों - तन वैराग को अंग - (पृ० 272)

व्यक्तियों की प्रवृत्तियों की व्याख्या करते हुए कवि कहते हैं सज्जन व्यक्ति किसी भी अवस्था में कुसंग को नहीं अपनाता । अगर कभी सज्जन कुसंग में पड़ भी जाय तो अपना रंग अर्थात् "सद्भाव" को नहीं छोड़ता । दयाराम ने अपने "रसथाल" नाम साखी ग्रंथ में इसी भाव को व्यक्त किया है ।

साधु सुसंग तजे नहीं, असंत न तजही कुसंग ।
सज्जन कवु दुसंती ते, नहीं छाड़त निज रंग ।।[1] 165

सामाजिक स्तर पर संतों ने पाखण्डी एवं दुष्टों का पूरी दृढ़ता से विरोध किया है । इन संतों का एक बड़ा भाग निम्नवर्ग से सम्बन्धित था, किन्तु आचरण की पवित्रता और आरक्षित सत्य की प्रतिष्ठा के कारण इनकी वाणी का प्रभाव समाज के उच्च वर्ग पर भी पड़ा । जिसमें असत् और कपटी प्रचुर मात्रा में थे । इस प्रकार के चरित्र से लोगों को परिचित कराना भी सामाजिक उत्थान के लिए आवश्यक था ।

संत कवि छोटम ने कपटी की उपमा सर्प से की है, दोनों समान प्रवृत्ति के होते हैं । अपनी असत् वृत्ति के कारण समाज में विष फैलाने का कार्य ही कर सकते हैं । अत: ऐसे व्यक्ति से दूर रहने का उपदेश छोटम ने दिया है -

दुरीजन ओर सर्प की, रीति रही समान
आहार न होवे आपको, पर को लेवे प्राण ।[2] 30

इस प्रकार के कपटी और असत् लोग समाज के लिए निन्दनीय है । ये लोग अपनी प्रतिष्ठा के लिए सत् व्यक्ति की भरसक निन्दा करते हैं परन्तु उनकी इस वृत्ति से उनकी नीचता ही प्रकट होती है जिस प्रकार सुरज को धूल डालने पर वह अपने ऊपर गिरती है ।

----

(1) रसथाल - (पृ0 248)
(2) छोटम नी वाणी (पृ0 246)

सज्जन की कीर्ति सरस, दुरिजन निंदे जाय
डारे धूरी सूरज को, उलटी आँख पुराय ।[1] 24

प्रीतम ने दुष्टों से जन समाज को चेतावनी देने के लिए एक सम्पूर्ण अंग "खल नु अंग" शीर्षक के अन्तर्गत लिखा है । विभिन्न प्रकार के मानव प्रवृत्ति वाले लोग और उनके मध्य से खल प्रवृत्तियुक्त लोगों की पहचान तथा उनसे दूर रहने के उपाय । कवि ने दुर्जन को सर्प से भी अधिक क्रूर कहा है क्योंकि मंत्र तंत्र द्वारा सर्प को विष मुक्त किया जा सकता है परन्तु खलवृत्ति वाले व्यक्ति को वश में करके उसकी कुबुद्धियों से उसे मुक्त नहीं किया जा सकता । अत: वह ताज्य है । उसकी खल वृत्ति की साक्षी पुराणों में भी है -

दुष्ट संग को दोष बहु शास्त्र पुराणे साख ।[2] 18

देवा साहब ने भी साखियों के माध्यम से खल से बचने का उपदेश दिया है । कुसंग का त्याग कर मानव को ईश्वर के भजन मनन में रमना चाहिये ।

कुसंग कबहु न कीजिए ।। जो गुरू लागा कान ।।
मिलि संगजन संत के ।। भजीए श्री भगवान ।।[3] 5

अखा ने साखियों में कपटी से दूर रहने का संदेश दिया है । उनके अनुसार कपटी का स्वभाव वधिक के जाल की तरह होता है जिसमें साधारण व्यक्ति फंस जाता है । कपटी की तुलना कवि ने बधिक के जाल से की है ।

"कपटी भक्त स्वांगी अखा
बाना बधिक का जाल ।।[4] - कपटी को अंग

----

(1) छोटय नी वाणी - (पृ0 246)
(2) प्रीतम वाणी - (पृ0 53)
(3) रामसागर - (पृ0 128)
(4) अक्षय रस - (पृ0 315)

सज्जन :

कपटी और दुर्जन की निंदा के साथ-साथ गुजरात के साखिकारों ने सज्जन की संगत का सत् उपदेश भी दिया है । दयाराम के अनुसार जिस प्रकार पारसमणी के स्पर्श से लोहा सोना बन जाता है उसी प्रकार सज्जन के संग से दुर्जन व्यक्ति की असत् प्रवृत्तियों का लोप हो जाता है । उसके स्वभाव में सुधार आने लगता है । अत: संतों ने समाज में सत् व्यक्ति के उचित आदर सम्मान को अनिवार्य माना है -

पारसमनि के संगते, लोहा हेम ही होय
साधुजन निज सम करे, अस प्रभाव चित प्रोय ।[1] 200

सज्जन व्यक्ति को समाज का एक महत्वपूर्ण अंग प्रमाणित करने के लिए उन्होंने उसकी चारित्रिक विशेषता की तुलना कल्पद्रुम, अमृत आदि से की है । इस प्रकार कवि ने एक विशेष प्रभाव स्थापित करने का प्रयास किया है जिसमें वे सफल रहे । सुधा केवल मीठा होता है परन्तु सज्जन उससे भी अधिक है क्योंकि वह "देवे ज्ञान विवेक" तथा अवगुणों का नाश करता है । विलास व्यसन तथा कुपथ-गामी का संग छोड़कर सज्जन के सतसंग की प्रेरणा प्रीतम ने दी है -

सज्जन सुधा से मिष्ठ है, अवगुण है अनेक
कहे प्रीतम पावन करे: देवे ज्ञान विवेक,[2] ।।

प्रीतम ने सज्जन व्यक्ति को कल्प वृक्ष से भी अधिक हितकारी माना है । क्योंकि वृक्ष तो केवल क्षुधा का निवारण करता है परन्तु सज्जन व्यक्ति विकारों का नाश करता है । अत: सज्जन अधिक गुणवान है ।

कल्पद्रुम ते अधिक है, सज्जन को गुण सार[3] 2
- सज्जन को अंग

----

(1) रामसागर - (पृ0 128)

(2) प्रीतम वाणी - (पृ0 100)

(3) प्रीतम वाणी - (पृ0 99)

"अवगुण हरे अनेक" कहकर प्रीतम ने उसकी महत्ता प्रतिपादित की है । मध्यकाल के विलास और व्यसन में डूबे व्यक्ति को सत् शिक्षा देकर ईश्वरोन्मुख बनाने का महान कार्य संतों ने अपनी पवित्र वाणी द्वारा किया ।

उपरोक्त साखियों के अध्ययन से यह स्पष्ट होता है कि संतों ने तत्कालीन समाज व्यवस्था को ध्यान में रखकर साखियाँ लिखी । उनकी गुजराती साखियों में विशेषतः साम्प्रत समाज की कुप्रथा, कपटी लोगों का समाज पर प्रभाव, नारी वर्ग पर होनेवाले अत्याचार आदि का जो वर्णन मिलता है यही उनके सामाजिक दृष्टिकोण को उजागर करता है । गुणवान और सज्जन व्यक्ति की तुलना में साखिकारों ने सामान्य प्रतीकों का प्रयोग किया है और परोक्ष रूप से असत् कार्य तथा कुप्रथा का विरोध किया है ।

भेदभाव :

संत कवियों की आन्तरिक एवं बाह्य दशाओं के प्रति दृष्टि भी पैनी थी । वे अपनी पैनी दृष्टि से सामाजिक परम्परा में आने वाली समस्त गर्हित मान्यताओं को किस प्रकार युग के अनुकूल बनाया जा सकता है, किस प्रकार उनका खण्डन किया जा सकता है का विवेचन करते थे । अतः तत्कालीन परम्पराबद्ध सामाजिक व्यवस्था के प्रति उनके अन्तस्थः में विद्रोह की भावना प्रज्वलित थी जिसका प्रतिबिम्ब उनकी साखियों में स्पष्ट है ।

मध्यकाल के अन्तिम भक्त कवि दयाराम ने "जीव सर्व हरि अंश छे" कहकर भेदभाव को मिटाने का प्रयास किया है । मानव के स्वभाव में भिन्नता हो सकती है परन्तु मिलजुल कर रहने का प्रयास करना चाहिये । प्रभु प्रेम के साथ-साथ मानव प्रेम का भी महत्त्व दयाराम की दृष्टि में महत्वपूर्ण था । उनके अनुसार "मनुष्य किसी भी कौम का हो, किसी भी धर्म का हो, सर्वप्रथम वह एक मनुष्य है। यह समझकर उससे प्रेम भाव रखना चाहिये और उसके सुख दुःख में भागीदार होना चाहिये ।[1]

---

[1] भक्त कवि दयाराम भाई नुं जीवन दर्पण - पृ0 219

7

सदाचारी प्रीतम की नजर समाजशुद्धि की तरफ अधिक थी । समाज में रहकर संसारियों के बीच बसकर प्रीतम ने कुकृत करने वालों को फटकारने का काम किया है । विषयी लोग तथा धन लोलुप लोगों का मध्यकालीन गुजरात में अधिक बोलबाला था । ऐसे लोग पाखण्डी होते हैं धर्म का भय उनमें नहीं होता ।

कामी करे न शुभ कर्म
धर्म न समझे धेर, [1]
(काम नु अंग)

प्रीतम एक निष्ठावान साधु होने के साथ-साथ एक सामाजिक कवि थे । ये पूर्ण वैरागी होने के साथ-साथ संसारियों की सामाजिक क्रियाओं को निरपेक्ष भाव से परखते थे ।[2] अतः इनकी साखियों में एक सच्चे समाज सुधारक, मानव हितैषी, उपदेशक के भावों को देखा जा सकता है । समाज में भेदभाव को दूर करके समानता के भावों को महत्व देते हुए संत कवि दादू लिखते हैं -

"एक देश हम देखिया, तंहरुति नहीं पलटै कोई ।[3] 3.
- मधि कौ अंग

समदृष्टि को महत्व देते हुए रवि साहब ने प्रेमपूर्वक एक रस होकर रहने पर ही बल दिया है और इसे कार्यकारी करने में प्रयत्नशील हुए हैं ।

रवीदास सो संत जन, रहे दुवध्यासे दूर
समदृष्टि सब भूत पर, प्रेम रसायण पूर ।[4] 72

---

(1) प्रीतम वाणी - (पृ0 93)
(2) प्रीतम एक अध्ययन (पृ0 24)
(3) संत सुधासार - (पृ0 292)
(4) असाधु को अंग - (पृ0 290)

रवीदास तथा दादू ने अपने युग की सामाजिक विषमता को मिटाने का प्रयास किया । एकरस होकर रहने की भावना को दादू अधिक महत्व देते हैं । "सर्वधर्म सम भाव" की भावना से अनुप्राणित है ।

वर्णाश्रम

गुजरात में धार्मिक और वर्णाश्रमगत विविधता होने के कारण यहाँ के लोगों में ऊँच-नीच की भावना जाति-पाति का भेद तथा आचार-विचार और रूढ़ियों की प्रधानता देखी जाती है । लोक जीवन में भी इसकी प्रधानता होने के कारण प्राय: आपसी झगड़ा तथा मतभेदों का होना स्वाभाविक था । उच्च वर्ण के लोग निम्न वर्ण के लोगों को हीन समझते थे तथा किसी भी सामाजिक कार्य में दोनों वर्णों के लोगों का एकत्र होना कलह की सृष्टि करता था ।

वस्तुत: वर्णाश्रम धर्म के प्रति गुजरात के साखीकार सजग थे और मध्यकाल की अत्यन्त नारकीय सामाजिक व्यवस्था के प्रति उनका मन विद्रोहाग्नि से भरा था । अखा, प्रीतम, छोटम, दादू, भाभाराम, रवीसाहब जैसे महान संतों ने प्राचीन जर्जरित व्यवस्था को नवीन रूप में सामने रखकर समता, एकता, सुशीलता, सेवा, सत्य और भक्ति आदि का स्वरूप प्रत्यक्ष कराकर जन समाज की आँखों का धूंध दूर करने का सन्निष्ठ प्रयास कर सुधार संस्कार की नींव डाली ।

वर्ण व्यवस्था और जाति भेदावस्था में अन्याय और अत्याचार का विकराल रूप स्पष्ट है । ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र की ऊँची-नीची श्रेणियाँ संघर्ष की स्थिति पैदा करती है । मध्यकालीन गुजरात में मंदिर आदि पवित्र स्थानों में निम्न वर्ण का प्रवेश वर्जित माना जाता था । उच्च वर्ण और निम्न वर्ण के बीच अवस्थित इस प्रकार के भेदभाव की संतों ने कटु निंदा की है ।

अखा के काल में वर्ण व्यवस्था समाज के प्रत्येक क्षेत्र में व्याप्त थी । देह और शरीर के रंग को लेकर भी ऊँच नीच की भावना थी । तत्कालीन समाज का प्रतिबिम्ब अखा की साखियों में स्पष्ट है । इस प्रकार की व्यवस्था निन्दनीय है ।

ऊँच वर्ण नेडे नहीं नीच वर्ण नोहे दूर ।
ज्यों नर लम्बा और ठींगना कोई छूवत नहीं सूर ।।[1] 2
– समदृष्टि अंग

प्राचीन ऋषियों ने वर्णाश्रम की व्यवस्था कर सारे प्राणी समाज की स्वतंत्रता को सुरक्षित रखा है, परन्तु एक सीमा के भीतर । स्वतंत्रता का अर्थ उनके लिए उच्छ्रंखलता नहीं है, जो मध्यकालीन गुजरात में सर्वत्र दिखाई पड़ता था ।

ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र इन चारों वर्णों में क्रमिक श्रेष्ठता है । वैश्य और शूद्र से ब्राह्मण और क्षत्रियों का अधिकार और सम्मान समाज में अधिक होता है । इसी विषय को लेकर समाज में कलह की स्थिति सृष्टि करना छोटम के लिए असह्य है । अतः वे आन्तरिक वेदना से भरकर कह उठते हैं –

स्थावर जंगम जाति की रवानी कहिये चार,
एक एक से रवानी में, जाति भेद अपार ।[2] 18

ऐसी वर्णव्यवस्था की निंदा छोटम ने की है । छोटम ने यह स्पष्ट करने का प्रयास किया है कि वेदाध्ययन करनेवाला ब्राह्मण तथा वेदों के मार्ग पर चलने वाला ब्राह्मण पूज्य है, परन्तु भक्ति की दृष्टि से सभी वर्ण बराबर है ऐसा उनका विश्वास था । वर्णों में न कोई बड़ा है न कोई छोटा सभी समान स्थान के अधिकारी हैं ।

संत कवि अखा ने अपनी आत्मा को महत्त्व देने वालों को महान कहा है। क्योंकि देह दरसी अपनी आत्मा की पुकार को नहीं सुनते । अतः भक्त को ऊँच-नीच के भेदभाव को, अवतारवाद को, छोड़कर ईश्वर की आराधना करनी चाहिये ।

----

§1§ अक्षयरस – §पृ0 206§

§2§ छोटम नी वाणी भाग-2 – §पृ0 256§

"देह दरसी राखत अखा वर्णाश्रम का भार"[1] ।

प्रपंची केवल संसारी प्रपंचों में फंसा रहता है, वर्णाश्रम के ऊँच नीच के चक्रव्यूह में घुसकर राम को भूला देनेवाला मूर्ख भक्त का जीवन व्यर्थ होता है - जैसे हालर की लकड़ी होती है -

"वर्णाश्रम का भार बहे रंच न खोजे राम ।
जो हालर की लकरी भारा बहत वे काम ।।[2] 10

गुजराती साखिकारों ने बाह्य आचार-विचार का सख्त विरोध किया है प्रपंचों में फंसा मन ईश्वर की भक्ति में लीन नहीं हो सकता । साखिकारों की यह विशेषता है कि उन्होंने भक्ति को अधिक महत्व दिया है । द्वैतभाव से ईश्वर की भक्ति को नकारा है । "चाख चोख पतिलाय" कहकर रवीसाहब ने प्रपंचों के प्रति मानव के प्रबल आकर्षण को स्पष्ट किया है -

"रवीदास मन अटकया आचार से, चाख चोख पतिलाय
द्वैतभाव जो दिल में, गोविन्द कहाँ समाय ।"[3] 15

एक अन्य साखी में कवि ने लोकाचार को महत्वहीन कहा है । हृदय की पवित्रता तथा अनन्य ईश्वर भक्ति पर अधिक बल दिया है । पवित्र हृदय से किया गया कार्य आचार युक्त होता है । अतः कवि लोकाचार से अधिक हृदय की पवित्रता पर बल देते हैं -

"मन मैला तन उजला, रवीदास लोकाचार,
मन में मैल न राखिये, रवी तब शुद्ध आचार ।"[4] 18

---

(1) अक्षय रस - (पृ0 280)

(2) अक्षय रस - (पृ0 281)

(3) रवीभाण सम्प्रदाय (पृ0 408)

(4) रवीभाण सम्प्रदाय (पृ0 408)

कवि के अनुसार ईश्वर भक्ति में आचार विचार का स्थान नगण्य है क्योंकि अगर अधिक आचार विचार का पालन किया जाय तो हरि प्राप्ति सम्भव नहीं है क्योंकि निष्ठावान भक्त का मन किसी आचार-विचार का मुखापेक्षी नहीं है -

"रवीदास अती आचार से, हरी सुणे नहीं बात;"[1] 27

गोकुल की बालाओं का उदाहरण देकर कवि एक जीवन्त उपमा प्रस्तुत करते हैं । कवि के अनुसार ब्रज बालाएं किस व्रत का या आचार का पालन करती थीं । वे लोग केवल शुद्ध प्रेम ही जानते थे और पवित्र प्रेम भाव से हरि भजन करते हैं -

रवीदास अन्तर प्रेम का, शोधी शुद्ध विचार
गोकुल की ब्रजनार सो, करती कोन आचार ।[2] 33

उपरोक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट होता है कि गुजरात के साखिकारों ने समाज में स्थित होकर निष्पक्ष भाव से समाज के हितार्थ साखियों की रचना की है। इन साखिकारों ने मानव कल्याण हेतु जिन साखियों की रचना की है उनका मनन करके, उनके आदेशानुरूप आचरण करनेवाले मुक्त हो गये थे या निष्कलंक जीवनयापन करने लगे थे ।

अत्याचारी बादशाहों द्वारा सताये गये लोग जैसे उस्मान खान ईसा 146 में गद्दी पर बैठा हिन्दुओं पर अमानुषिक अत्याचार करता था, अत्याचार से त्रस्त जनता को धर्म परिवर्तन के लिए उत्प्रेरित करता था । अत: जनता सामयिक शान्ति हेतु स्वधर्म पर विचार करना छोड़कर धर्म परिवर्तन के लिए तैयार हो जाती थी । इस [illegible] के वातावरण में स्वधर्म से प्रायः जनता का विश्वास उठ गया था । धर्म का पहला स्तम्भ है - सत्य । सत्य मन, सत्य वचन

----

[1] रवीभाण सम्प्रदाय - पृ0 409

[2] रवीभाण सम्प्रदाय - पृ0 401

और सत्य कर्म की महिमा का प्रतिपादन अखा, निरांत, प्रीतम, निर्वाण साहब आदि ने किया है । इसका दूसरा स्तम्भ है - लोक कल्याण । इसके आचरण से धर्मोन्नति होती है । परोपकार, सेवा, क्षमा, दया, तप और ज्ञान की प्रशंसा जीवणदास ‡राम-कबीर‡, लालदास, गबरी बाई आदि ने अपनी साखियों में की है । लोक कल्याण के ये मूल तत्व हैं । अत: संतों ने धर्म विषयक गुढ़ तत्वों को साधारणीकरण के लिए हिन्दी और गुजराती दोनों भाषाओं में लिखकर जन समाज में एक धार्मिक चेतना का वातावरण फैलाने का महत् कार्य किया है । इस प्रकार परोक्ष रूप से एक सामाजिक कार्य भी किया ।

अन्य सामायिक संदर्भ :

गुजरात के साखिकारों ने अपनी रचनाओं में विभिन्न प्रासंगिक अर्थात् देश-का-लानुरूप विषयों का भी वर्णन किया है । किस महान आत्मा का आगमन कहाँ से हुआ, उनके प्रिय शिष्य, उनकी शिष्य संख्या, प्रदेश के राजा का परिचय, राजा द्वारा सम्मानित अवसरों का वर्णन, राजा के राजपाट का वर्णन जैसे महत्वपूर्ण सन्दर्भों का समावेश गुजरात के साखी रचयिताओं ने किया है । साखी जैसे काव्य रूप में अन्तर्गत इस प्रकार के प्रासंगिक विषयों के समावेश प्राय: नहीं देखा जाता । अत: यह देखना है कि संत इस कार्य में कहाँ तक सफल हुए हैं । कुछ संतों ने साखियों के माध्यम से अपना जन्म समय, गुरू का नाम, ज्ञान प्राप्ति का समय, समाज उन्नयन कार्य, प्रिय शिष्य का नाम आदि का स्पष्ट उल्लेख किया है ।

संत निर्मलदासजी गुजरात के एक महान संत थे । उनकी सात्त्विक प्रवृत्ति से ईस्ट इन्डिया कम्पनी के समय में नियुक्त न्यायाधीश, रिचर्डसन साहब बहुत प्रभावित हुए थे । निर्मलदास के प्रति सम्मान भाव के कारण उन्होंने अनेक संतों के साथ मंदिर में समागम किया था । भगवततत्व विषयक अनेक प्रश्नों का समाधान भी संतों द्वारा किया गया था । इसका प्रमाण निर्मलदास के शिष्य द्वारा रचित साखियों में उपलब्ध हैं -

घोड़े बेसी गुरूदेव फरे, ने गोरा अंग्रेज सलाम करे,
न्यायाधीश एक रिचर्डसन, नाम नेक दिल खरे ।। ‡पृ० 319‡

संत छबीलदास, निर्मलदास के शिष्य थे । उनकी इच्छा थी कि उनका अन्तिम समय गुरू के चरणों में बिते । छबीला की इस मनोवृत्ति को उनके सखा ने साखी रूप में लिपिबद्ध करके गुरू को अर्पण किया -

छबीला तेरा भाग्य का, कैसे बरहु बखान,
तेरे लिये यह शहर में, आप ठाढे मिजमान ।[1]

छबीला तो है धन्य है, धन्य तेरो अनुराग,
संत पुरूष के चरण में, अन्त सोचे महाभाग ।

नाथाजी की महानता से प्रभावित होकर संभाजी जाट उनके शिष्यत्व के लिए प्रवृत्त हुए इस विषय का संकेत साखियों में यों मिलता है -

पालनपुर में जाट थे, खंभाजी पे किन्हीं महेर,
नाथा को नाम सुनाईया, दिल में लगे लहेर ।[2]

नाथाजी और भाभाराम के मंगल मिलन का वर्णन कवि (नाथाजी) ने निम्नलिखित साखी में लिपिबद्ध किया है -

नाथाजी भाभाराम का, मंगल हुआ मिलान
योगी की गति को बुझे, योगी के दिलजान ।[3]

बहादुरशाह को स्पष्ट शब्दों में उनके भविष्य विषयक कुछ घटनाओं को नाथाजी ने कहा था जिसमें उनके ग्यारह वर्ष तक राज्य करना तत्पश्चात् अंग्रेजों द्वारा उनकी हत्या होने की घटना का भी उल्लेख है । जिसको नाथाजी ने साखियों के रूप में लिखा है -

---

(1) संत निर्मलदासजी - (पृ0 385)
(2) संत निर्मलदासजी - (पृ0 382)
(3) संत नाथाजी काका - (पृ0 61)

बहादुरशाही तखत पे, एकादश साल रहाय
दीव में दंगा फीरंगी से, तेरा शिश कटाय
नाथाजी की बानी सुनी, बहादुरशाही हुए म्लान
शिर झुकायके चले गये, शोचन लगे सुलतान ।[1]

नाथाजी के एक भक्त ने गुरू की विद्वता को साखियों में लिपिबद्ध किया है-

संत वचन पलटे नहीं, हे नी होवनहार
शाह बहादुर को दीव को, फीरंगी कर दिये ठार ।[2]

ई0स0 1482 में गुजरात अकालग्रस्त हुआ । सुरत शहर भी अकाल की चपेट में बुरी तरह से आ गया । हजारों लोग बिना अन्न भूखे मरने लगे । आपसी भेदभाव भूलकर लोगों को भोजन कराना, उनके कष्टों को सुनकर उसे दूर करने की चेष्टा करना तथा आश्रम में अकाल पिड़ित लोगों की व्यवस्था करने हेतु निर्वाण साहब ने विविध प्रकार की व्यवस्था की थी । उनकी शिष्यों की टोली सदा सहायतार्थ तत्पर रहती थी । इस व्यवस्था का उल्लेख निर्वाण साहब के भक्तों द्वारा रचित साखियों में कहीं कहीं उपलब्ध है -

बुरे दिन दुकाल के, बीना अन्न तड़पाय,
सदगुरू बड़े दयानिधि, [illegible] दुःख पाय ।[3]

साईं निर्वाण पुकारके, सबको कियो ऐलान
मत कोई भुखे मरो, चलो धाम निर्वाण ।[4]

सुरत के संत निर्वाण साहब की चर्चा दिल्ली के सुलतान सिकन्दर लोदी को भी प्रभावित किया । अत: सुलतान के घुड़सवार ने उनका खत लेकर सुरत

----

(1) संत नाथाजी काका - (पृ0 242)
(2) संत नाथाजी काका - (पृ0 242)
(3) निर्वाण साहब - (पृ0 255)
(4) निर्वाण साहब - (पृ0 261)

आकर निर्वाण साहब के चरणों पर वह खत अर्पण किया । प्रत्युत्तर में निर्वाण साहब ने एक साखी लिखकर सुलतान के शासन काल की सीमा के विषय में अवगत कराया । वह साखी उनके भक्तों द्वारा आश्रम के निर्वाण साहब की अन्य रचनाओं के साथ सहेज कर रखी गई है । वही साखी यहाँ प्रस्तुत है -

उनतीस साल तखत पे, रहो सिकंदर शाह,
दिल्ली के सुलतान हो, जीक्र ने की रखो चाह ।[1]

एक अन्य साखी में निर्वाण साहब की बाबा बुद्धनशाह से समागम का उल्लेख भी मिलता है -

बुद्धनशाह दुधा धारी को, मिले साँई निर्वाण ।[2]

इब्राहिम सोहे खेद है, तुम क्यों रहो बेचैन,[3]

पालनपुर की तखत पे, ठाढो बुढणखान
बाईस साल विराजई, फिर होंगे गवान,[4]

उपरोक्त साखियों में रचनाकारों का आशय स्पष्ट है । इन साखियों में तत्कालीन समाज की छवी का आभास होता है ।

राम कबीर सम्प्रदाय के संत जीवणदास के स्वधाम गमन विषय को भी साखियों में निहित किया है -

संवत् सतर से साड़त्रीस, सुद पंचमी भादर मास
ता दिन जीवणदास, लीयो स्वधाम निवास

---

(1) निर्वाण साहब - (पृ0 413)
(2) निर्वाण साहब - (पृ0 566)
(3) निर्वाण साहब - (पृ0 559)
(4) निर्वाण साहब - (पृ0 616)

साखियों के माध्यम से न केवल अध्यात्मभाव की वृद्धि होती है अपितु सामाजिक विषयों का सामान्य ज्ञान भी होता है । उपरोक्त उदाहरणों से यह स्पष्ट है कि उनकी हिन्दी और गुजराती साखियाँ सामाजिक एवं राजनैतिक प्रसंग विशेष को स्पष्ट करने में प्रभावोत्पादक रही हैं । ये साखीकार अधिकांशत: गरीब जन समाज से उठे थे । उन्हें अपने सामाजिक परिवेश का पूरा अनुभव मिला था । अत: वैयक्तिक जीवन में विसंगति, शिक्षा, आर्थिक दरिद्रता, राजकार्य तथा राजाओं के जीवन विषयक तथ्यों के जो प्रसंग एवं संदर्भ इनकी साखियों में बिखरे पड़े हैं वे अनेक दृष्टियों से महत्वपूर्ण है । विविध ऐतिहासिक सांस्कृतिक, सामाजिक, आर्थिक, व्यावसायिक संदर्भों से सम्पन्न होने के कारण गुजरात का साखी साहित्य विशेष अध्येतव्य है ।